मयि सर्वाणि कर्माणि
संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व
विगतज्वरः ॥३०॥

मयि – मुझमें; सर्वाणि – सब तरह के; कर्माणि – कर्मों को; संन्यस्य – पूर्णतया त्याग करके; अध्यात्म – पूर्ण आत्मज्ञान से युक्त; चेतसा –

चेतना से; निराशीः – लाभ की आशा से रहित, निष्काम; निर्ममः – स्वामित्व की भावना से रहित, ममतात्यागी; भूत्वा – होकर; युध्यस्व – लड़ो; विगत-ज्वरः – आलस्यरहित |

Text

हे अर्जुन! अपने सारे कार्यों को मुझमें समर्पित करके मेरे पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर, लाभ की आकांशा से रहित, स्वामित्व के किसी दावे के बिना तथा आलस्य से रहित होकर युद्ध करो |

गीता भूषण टीका

इस कारण से क्योंकि तुम एक परिनिष्ट भक्त हो और आत्मा के ज्ञान से युक्त हो इसलिए अपने सभी कर्मों को मुझ सर्वेश्वर को समर्पित करते हुए युद्ध करो जैसे एक राजा का सेवक सभी कुछ राजा को समर्पित कर देता है |

तुमको कर्ता के अभिनिवेश से शून्य रहते हुए कार्य करो| जिस प्रकार एक सेवक राजा पर निर्भर रहता है वह राजा की आज्ञा के अनुसार अपने कार्य करता है उसी प्रकार तुम अपने सारे कार्य मेरी आज्ञा के अनुसार करो ताकि सामान्य लोगों को शिक्षा प्राप्त हो सके |

जिसकी चेतना आत्मा में है वह अध्यात्म चेतस कहलाता है |

निराशिः माने यह मेरे स्वामी की आज्ञा है इसलिए इस मैं करूंगा और इस प्रकार फल की इच्छा से शून्य रहो और इस प्रकार स्वामित्व को त्यागते हुए (निर्मम) यथा “ मेरे कर्मों का फल केवल मेरे लिए है” और

मित्रों का वध करने के विचार से उत्पन्न संताप को त्यागते हुए हे अर्जुन तुम युद्ध करो |

अर्जुन को युद्ध करना था क्योंकि यह एक क्षत्रिय का कर्त्तव्य होता है | इस का अर्थ यह है की जो लोग मुक्ति चाहते हैं उन्हें अपने आश्रम के अनुसार

नियत किये गए कर्मों को करना चाहिए |

नोट: इस का अर्थ यह है की वर्ण के नियत कर्मों को करना चाहिए परन्तु वह आश्रम के अनुसार होने चाहिए | अर्जुन यह कह सकते थे की वे एक वानप्रस्थी क्षत्रिय हैं और इस कारण से उन्हें युद्ध त्याग देना चाहिए परन्तु वे

गृहस्थ थे और इस कारण से उन्हें युद्ध के अपने नियत कर्त्तव्य को करना ही चाहिए था |

Purport

यह श्लोक भगवद्गीता के प्रयोजन को स्पष्टतया इंगित करने वाला है | भगवान् की शिक्षा है कि स्वधर्म पालन के लिए सैन्य अनुशासन के सदृश

पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होना आवश्यक है | ऐसे आदेश से कुछ कठिनाई उपस्थित हो सकती है, फिर भी कृष्ण के आश्रित होकर स्वधर्म का पालन करना ही चाहिए, क्योंकि यः जीव की स्वाभाविक स्थिति है | जीव भगवान् के सहयोग के बिना सुखी नहीं हो सकता क्योंकि जीव की नित्य

स्वाभाविक स्थिति ऐसी है कि भगवान् की इच्छाओं के अधीन रहा जाय |अतः श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने का इस तरह आदेश दिया मानो भगवान् उसके सेनानायक हों | परमेश्वर की इच्छा के लिए मनुष्य को सर्वस्व की बलि करनी होती है और साथ ही स्वामित्व जताये बिना स्वधर्म का पालन करना

होता है | अर्जुन को भगवान् के आदेश का मात्र पालन करना था | परमेश्वर समस्त आत्माओं के आत्मा हैं, अतः जो पूर्णतया परमेश्वर पर आश्रित रहता है या दुसरे शब्दों में, जो पूर्णतया कृष्णभावनाभावित है वह अध्यात्मचेतस कहलाता है | निराशीः का अर्थ है स्वामी के आदेशानुसार कार्य करना,

किन्तु फल की आशा न करना। कोषाध्यक्ष अपने स्वामी के लिए लाखों रुपये गिन सकता है, किन्तु इसमें से वह अपने लिए एक पैसा भी नहीं चाहता। इसी प्रकार मनुष्य को यह समझना चाहिए कि इस संसार में किसी व्यक्ति का कुछ भी नहीं है, सारी वस्तुएँ परमेश्वर की हैं। मयि अर्थात् मुझमें का

वास्तविक तात्पर्य यही है | और जब मनुष्य इस प्रकार से कृष्णभावनामृत में कार्य करता है तो वह किसी वस्तु पर अपने स्वामित्व का दावा नहीं करता | यह भावनामृत मिर्माम अर्थात् "मेरा कुछ नहीं है" कहलाता है | यदि ऐसे कठोर आदेश को, जो शारीरिक सम्बन्ध में तथाकथित बन्धुत्व भावना से रहित है, पुरा

करने में कुछ झिझक हो तो उसे दूर कर देना चाहिए | इस प्रकार मनुष्य विगतज्वर अर्थात् ज्वर या आलस्य से रहित हो सकता है | अपने गुण तथा स्थिति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को विशेष प्रकार का कार्य करना होता है और ऐसे कर्तव्यों का पालन कृष्णभावनाभावित होकर किया जा सकता है |

इससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा |

ये मे मतमिदं

नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।

श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते

तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

ये – जो; मे – मेरे; मतम् – आदेशों को; इदम् – इन; नित्यम् – नित्यकार्य के रूप

में; अनुतिष्ठन्ति – नियमित रूप से पालन करते हैं; मानवाः – मानव प्राणी; श्रद्धा-वन्तः – श्रद्धा तथा भक्ति समेत; अनसूयन्तः – बिना ईर्ष्या के; मुच्यन्ते – मुक्त हो जाते हैं; ते – वे; अपि – भी; कर्मभिः – सकामकर्मों के नियमरूपी बन्धन से |

Text

जो व्यक्ति मेरे आदेशों के अनुसार अपना कर्तव्य करते रहते हैं और ईर्ष्यारहित होकर इस उपदेश का श्रद्धापूर्वक पलान करते हैं, वे सकाम कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं |

गीता भूषण टीका

भगवान् की इस शिक्षा का पालन करने वालों को प्राप्त होने वाले महान फल के वर्णन के द्वार यह श्लोक भगवान् की शिक्षा के सर्व श्रेष्टत्व को प्रदर्शित करता है और यह प्रदर्शित होता है की यह श्रुतियों का रहस्य है |

(एक अर्थ यह भी है की जो वेदों की उन नित्य शिक्षाओं का पालन करता है क्योंकि वेद शाश्वत हैं इसलिए |)

केवल वही लोग जो नित्य ही भगवान् की शिक्षाओं का दृढ श्रद्धा से पालन करते हैं और यह नहीं सोचते की यदि कोई मुक्ति में रुचि रखता है तो उसे इन अनावश्यक भौतिक कार्यों में

संलग्न होने की आवश्यकता नहीं है और यह तो मात्र समय का अपव्यय हैं तो ऐसा व्यक्ति ही कर्म बंधन से मुक्त हो पाता है |

एक अर्थ और भी है | जो मेरे द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं का पालन करते हैं और वे भी जो पालन तो नहीं कर पाते परन्तु जिनको मेरी

शिक्षाओं में श्रद्धा है और साथ ही वे इसका अनादर नहीं करते तो वे भी कर्म बंधन से मुक्त हो जायेंगे | यद्यपि वर्तमान में वे पालन नहीं कर पा रहे हैं परन्तु क्योंकि उनकी श्रद्धा है और उनमें इन शिक्षाओं के प्रति द्वेष नहीं है इस कारण से उनकी बाधाएं क्रमशः क्षीण होती जायेंगी और कुछ समय के

उपरान्त इन शिक्षाओं का पालन कर के वे भी मुक्त हो जायेंगे |

Purport

श्रीभगवान् कृष्ण का उपदेश समस्त वैदिक ज्ञान का सार है, अतः किसी अपवाद के बिना यह शाश्वत सत्य है | जिस प्रकार वेद शाश्वत हैं उसी प्रकार कृष्णभावनामृत का यह

सत्य भी शाश्वत है | मनुष्य को चाहिए कि भगवान् से ईर्ष्या किये बिना इस आदेश में दृढ़ विश्वास रखे | ऐसे अनेक दार्शनिक है, जो भगवद्गीता पर टीका रचते हैं, किन्तु कृष्ण में कोई श्रद्धा नहीं रखते | वे कभी भी सकाम कर्मों के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते | किन्तु एक सामान्य पुरुष भगवान् के इन

आदेशों में दृढविश्वास करके कर्म-नियम के बन्धन से मुक्त हो जाता है, भले ही वह इन आदेशों का ठीक से पालन न कर पाए, किन्तु चूँकि मनुष्य इस नियम से रुष्ट नहीं होता और पराजय तथा निराशा का विचार किये बिना निष्ठापूर्वक कार्य करता है, अतः वह विशुद्ध

कृष्णभावनामृत को प्राप्त होता है
|

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो
नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि
नष्टानचेतसः ॥३२॥

ये – जो; तु – किन्तु; एतत् – इस; अभ्यसूयन्तः – ईर्ष्यावश; न –

नहीं; अनुतिष्ठन्ति – नियमित रूप से सम्पन्न करते हैं; मे – मेरा; मतम् – आदेश; सर्व-ज्ञान – सभी प्रकार के ज्ञान में; विमूढान् – पूर्णतया दिग्भ्रमित; तान् – उन्हें; विद्धि – ठीक से जानो; नष्टान् – नष्ट हुए; अचेतसः – कृष्णभावमृत रहित |

Text

किन्तु जो ईर्ष्यावश इन उपदेशों की अपेक्षा करते हैं और इनका पालन नहीं करते उन्हें समस्त ज्ञान से रहित, दिग्भ्रमित तथा सिद्धि के प्रयासों में नष्ट-भ्रष्ट समझना चाहिए |

गीता भूषण टीका

यह श्लोक भगवान् की आज्ञा को न मानने के परिणाम का वर्णन करता है |

परन्तु तुम यह जानो की जो मेरी इस आज्ञा का पालन नहीं करते हैं , जो श्रुतियों का रहस्य है और मुझ सर्वेश्वर के द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो सभी जीवों के

सुहृद हैं ,वे विभ्रष्ट हो जाते हैं क्योंकि उनकी इन शिक्षाओं में कोई श्रद्धा नहीं होती और वे इनसे द्वेष करते हैं | इस कारण से वे नियत कर्म और परमात्मा के ज्ञान से शून्य रहते हैं और इस प्रकार विवेकशून्य होकर विभ्रष्ट हो जाते हैं|

Purport

यहाँ पर कृष्णभावनाभावित न होने के दोष का स्पष्ट कथन है | जिस प्रकार परम अधिशासी की आज्ञा का उल्लंघन के लिए दण्ड होता है, उसी प्रकार भगवान् के आदेश के प्रति अवज्ञा के लिए भी दण्ड है | अवज्ञाकारी व्यक्ति चाहे कितना

ही बड़ा क्यों न हो वह शून्य हृदय होने से आत्मा के प्रति तथा परब्रह्म, परमात्मा एवं श्री भगवान् के प्रति अनभिज्ञ रहता है | अतः ऐसे व्यक्ति से जीवन की सार्थकता की आशा नहीं की जा सकती |

सदृशं चेष्टते स्वस्याः
प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः
किं करिष्यति ॥३३॥

सदृशम् – अनुसार; चेष्टते – चेष्टा करता है; स्वस्याः – अपने; प्रकृतेः – गुणों से; ज्ञान-वान् – विद्वान्; अपि – यद्यपि; प्रकृतिम् – प्रकृति

को; यान्ति – प्राप्त होते हैं; भूतानि – सारे प्राणी; निग्रहः – दमन; किम् – क्या; करिष्यति – कर सकता है |

Text

ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है, क्योंकि सभी प्राणी तीनों गुणों से प्राप्त अपनी प्रकृति का ही अनुसरण करते हैं | भला दमन से क्या हो सकता है?

गीता भूषण टीका

“शास्त्र यह कहता है की जो आप सर्वेश्वर की आज्ञा नहीं मानते हैं उन्हें दंड मिलत है तो क्या उन्हें आप से भय नहीं लगता ?”

यद्यपि व्यक्ति शास्त्र वर्णित दंड को जानता भी हो अर्थ वह ज्ञानवां भी क्यों न हो फिर भी वह अपने बुरे स्वभाव के अनुसार ही कार्य करता है जो अनादिकाल के दुर्वासना के संस्कार के कारण बन जाता है |

तो फिर उस व्यक्ति का तो कहना ही क्या जो दण्ड के बारे में नहीं जानता है ?

सभी लोग अपनी पाप वासनाओं का अनुगमन करते हैं यद्यपि यह इच्छाएं अर्थ,धर्म,काम और मोक्ष के पुरुषार्थों का नाश करने वाली होती हैं

जिस व्यक्ति को सत्संग प्राप्त नहीं है तो यदि उसे शास्त्र ज्ञान हो भी तो भी उसको दंड देने से क्या प्रयोजन सिद्ध

होगा ? वह उन दुर्वासनाओं के दुष्प्रभावों का नाश करने में समर्थ नहीं हो पायेगा परन्तु यदि उसे सत्संग प्राप्त होता है तो वह प्रबल दुर्वासनाओं का भी नाश कर सकता है |

इसलिए स्मृति में कहा गया है |

ततो दुःसङ्गम् उत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्

सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनो-व्यसङ्गम् उक्तिभिः

एक बुद्धिमान व्यक्ति को हर प्रकार के दुसंग को त्याग देना चाहिए और भक्तों का संग करना चाहिये जिनके शब्द मन की अनावश्यक आसक्ति को काट देंगे |श्रीमद भागवतम 11.26.26

Purport

कृष्णभावनामृत के दिव्य पद पर स्थित हुए बिना प्रकृति के गुणों के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ जा

सकता, जैसा कि स्वयं भगवान् ने सातवें अध्याय में (७.१४) कहा है | अतः सांसारिक धरातल पर बड़े से बड़े शिक्षित व्यक्ति के लिए केवल सैद्धान्तिक ज्ञान से आत्मा को शरीर से पृथक् करके माया के बन्धन से निकल पाना असम्भव है | ऐसे अनेक तथाकथित अध्यात्मवादी हैं, जो अपने को

विज्ञान में बढ़ा-चढ़ा मानते हैं, किन्तु भीतर-भीतर वे पूर्णतया प्रकृति के गुणों के अधीन रहते हैं, जिन्हें जीत पाना कठिन है | ज्ञान की दृष्टि से कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, किन्तु भौतिक प्रकृति की दीर्घकालीन संगति के कारण वह बन्धन में रहता है | कृष्णभावनामृत उसे भौतिक बन्धन से छूटने में सहायक होता

है, भले ही कोई अपने नियत्कर्मों के करने में संलग्न क्यों न रहे | अतः पूर्णतया कृष्णभावनाभावित हुए बिना नियत्कर्मों का परित्याग नहीं करना चाहिए | किसी को भी सहसा अपने नियत्कर्म त्यागकर तथाकथित योगी या कृत्रिम अध्यात्मवादी नहीं बन जाना चाहिए | अच्छा तो यह होगा

की यथास्थिति में रहकर श्रेष्ठ प्रशिक्षण के अन्तर्गत कृष्णभावनामृत प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय | इस प्रकार कृष्ण की माया के बन्धन से मुक्त हुआ जा सकता है |